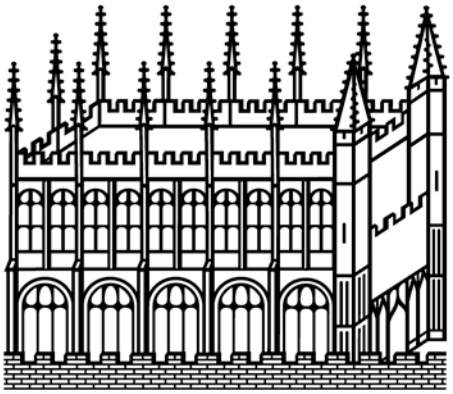

Bodleian Libraries

UNIVERSITY OF OXFORD

This book is part of the collection held by the Bodleian Libraries and scanned by Google, Inc. for the Google Books Library Project.

For more information see:

http://www.bodleian.ox.ac.uk/dbooks

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 2.0 UK: England & Wales (CC BY-NC-SA 2.0) licence.

THE
CLOUD MESSENGER.

RÁJÁ LAKSHMAN SIṄH.

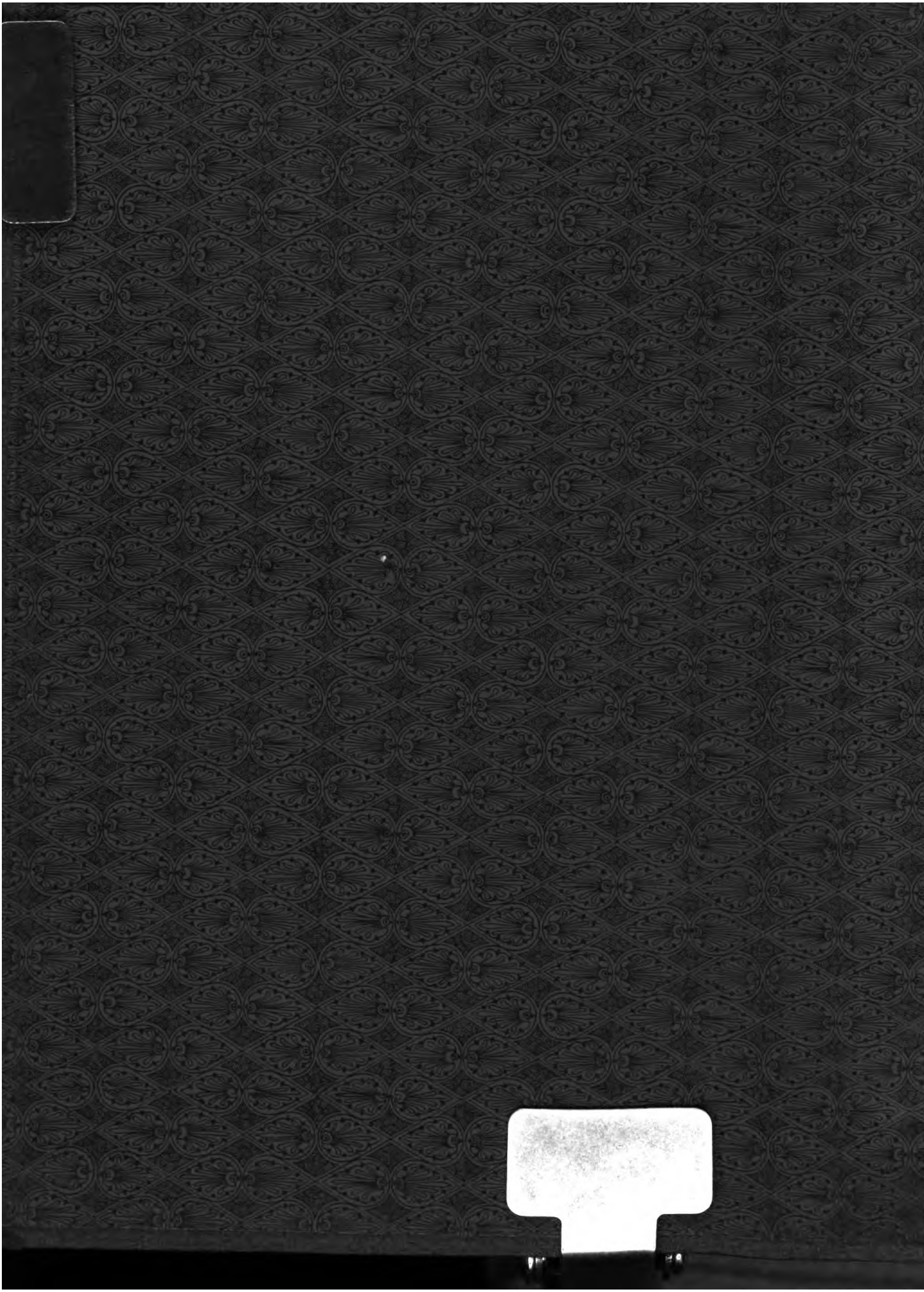

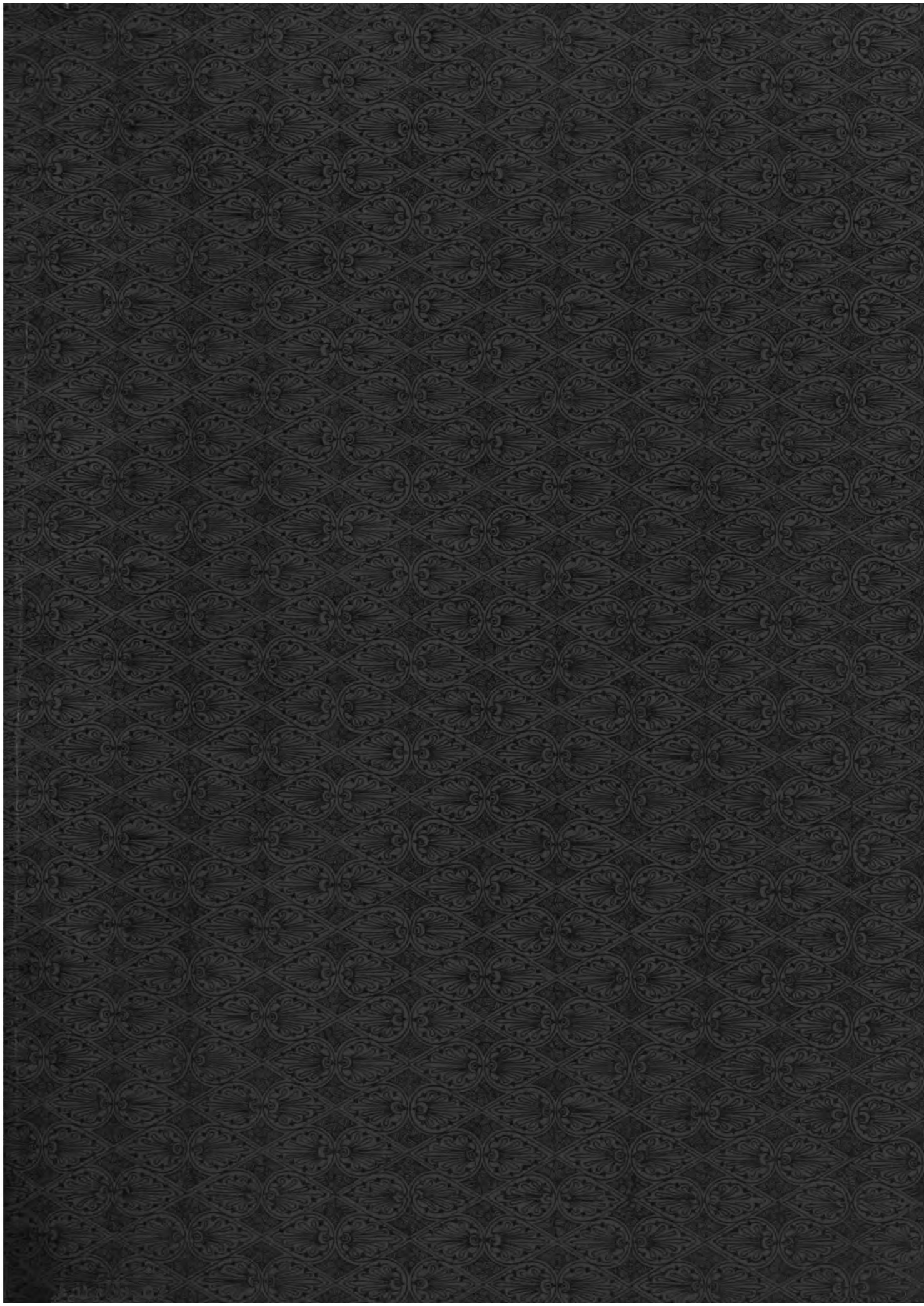

Hindi Kali 4

13E 42

THE

CLOUD MESSENGER

OF

KÁLIDÁS,

RENDERED INTO HINDI VERSE, WITH NOTES,

BY

RÁJÁ LAKSHMAN SINH,

DEPUTY COLLECTOR.

मेघदूत

श्री कवि कालिदास के संस्कृत काव्य

का

उल्था हिन्दी भाषा के छन्दों में

टीका सहित

राजा लक्ष्मण सिंह का किया हुआ

मेडिकल् हाल् के छापे ख़ाने में छापा गया।

सन् १८८२ ई०।

PRINTED BY E. J. LAZARUS & CO.,

AT THE MEDICAL HALL PRESS, BENARES.

INDIAN INSTITUTE
OXFORD

TO

F. S. GROWSE, ESQ., C. I. E.

MAGISTRATE AND COLLECTOR OF BULANDSHAHR,
IN RECOGNITION OF HIS INTEREST
IN THE DEVELOPMENT OF HINDI LITERATURE,
THIS METRICAL HINDI VERSION
OF THE CLOUD MESSENGER OF KALIDAS
IS DEDICATED BY THE

BULANDSHAHR: } TRANSLATOR.
24th June 1882.

श्रीयुत

फ्रेड्रिक सालमन ग्रूस् साहिब
एम॰ ए॰, सी॰ आई॰ ई॰

को

हिन्दी भाषा के प्रबृध्योत्साही जानकर
कालिदास के मेघदूत काव्य का यह
हिन्दी छन्दबद्ध अनुवाद उल्थाकार
ने उन को अर्पण किया

भूमिका

उपमा अलंकार में कालिदास से बढ़कर अबतक कोई कवि भारतवर्ष में नहीं हुआ और उन के ग्रंथों में मेघदूत भी इसी अलंकार की उत्कृष्टता के कारण सराहने योग्य गिना जाता है। इस छोटे से काव्य को पढ़कर पढ़नेवाले के चित्तपर अंक सा हो जाता है कि विधाता ने कालिदास को बड़ी कल्पनाशक्ति दी थी। मनुष्य की प्रकृति जानने और स्थान रचना का वर्णन करने और स्वभाव का लालित्य दिखाने में यह कवि एक ही हुआ है। मेघदूत का अवलोकन करने से ये उत्तम गुण कालिदास के भली भांति दीखते हैं उन के वाग्विलास की बड़ाई जितनी की जाय थोड़ी है इस काव्य का प्रकरण संक्षेप से यह है कि कोई यक्ष अपने काम में असावधान हो गया तब उस के स्वामी कुबेर ने कोप कर उसे बरस दिन के लिये देश निकाला दिया इस शाप के वश वह अलकापुरी को छोड़ दक्खन में रामगिरि पर्वत पर अकेला जा रहा जब उस पहाड़ में रहते कुछ दिन बीत गए और असाढ़ का बादल उमड़ा उस बिरही को अपनी स्त्री की बहुत सुध आई मन में सोचा कि प्यारी के पास कुछ कुशल का संदेसा भेजना चाहिये बादल के सामने खड़ा हुआ इसी सोच विचार में था कि प्रेम की अधिकता में विह्वल हो गया बादल ही को दूत बनाकर अलकापुरी का मार्ग बताने और अपना संदेसा सुनाने लगा रामगिरि से अलका तक जो जो नदी और पहाड़ और तीर्थ और मुख्य मुख्य नगर और देश हैं उन का थोड़ा थोड़ा पता देता गया है पहले ६५ श्लोकों में अलका

तक पहुंचा है इसी का नाम "पूर्व्वमेघ" है फिर "उत्तरमेघ" के ५१ श्लोकों में अलकापुरी की शोभा और यक्षिणी की दशा वर्णन करके अपना संदेसा बतलाया है। निदान जब बादल से कहे हुए संदेसे का वृत्तान्त कुवेर के कान तक पहुंचा उसने दयालु होकर यक्ष का अपराध क्षमा किया और स्त्री पुरुष का संयोग फिर बरस दिन बीतने से पहले ही हुआ॥

हमने हिन्दी छन्दों में यह उल्था अभी पूर्व्वमेघ का किया है परन्तु विचार है कि यदि अवकाश मिले तो उत्तर का भी करेंगे एक भाषा के छन्द को दूसरी भाषा के छन्द में उल्था करना कुछ तो आपही कठिन होता है तिसपर हमारा नियम है कि मूल से उल्था न्यूनाधिक न हो और भाव में भी कुछ विरोध न आवे इसी से कठिनाई अधिक दीखती है फिर भी हम आशा करते हैं कि हमारे इस तुच्छ आरम्भ को देखकर भी कोई हिन्दी भाषा को अल्पता का दोष न देगा किन्तु विदित होगा कि यह भाषा बड़े विस्तार की है॥ इति शुभम्॥

बुलन्द शहर — लक्ष्मणसिंह वर्म्मा

२४ जून १८८२ ई०।

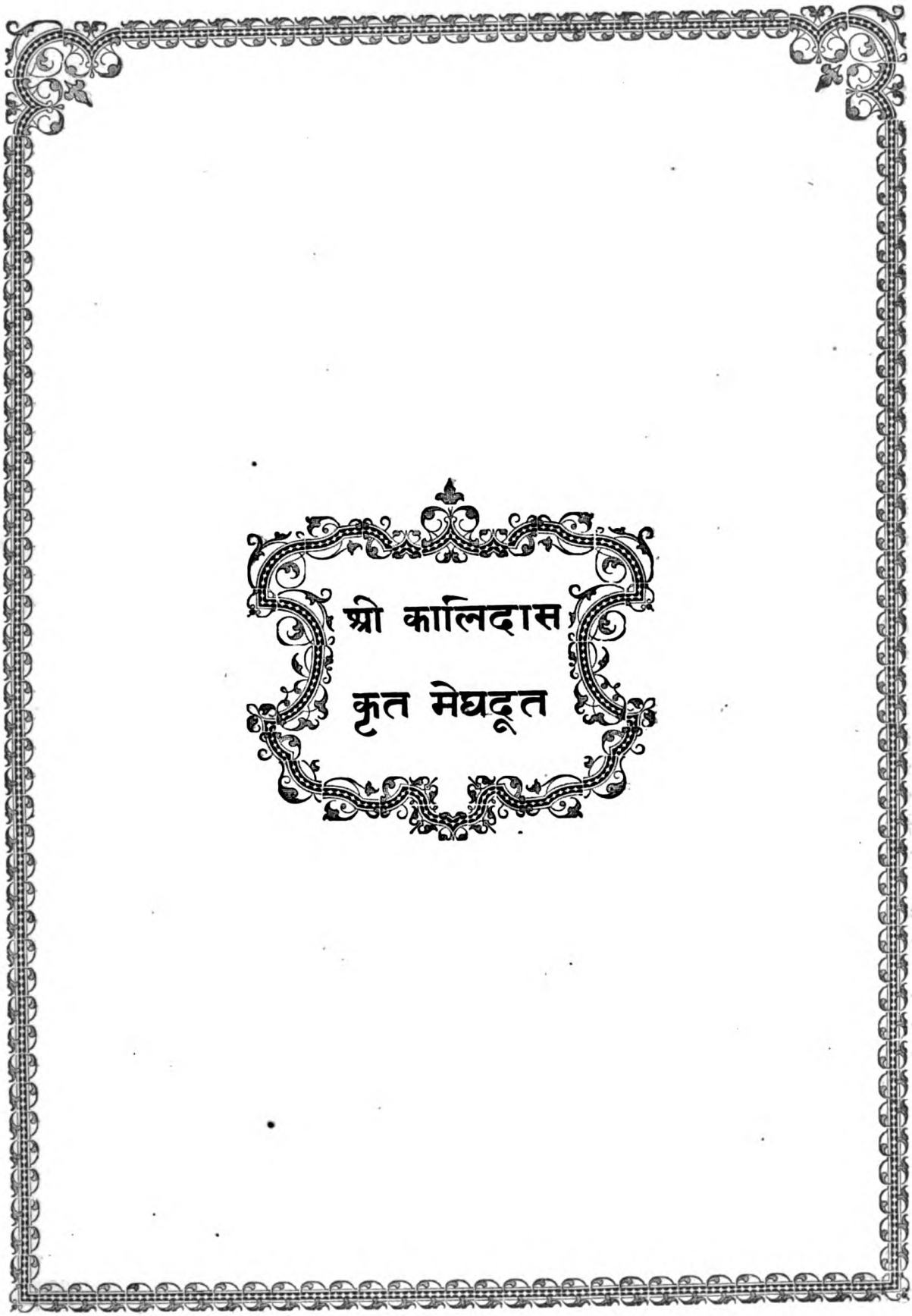

श्री कालिदास कृत मेघदूत

श्रीः

मेघदूतपूर्व्वार्द्धम्

मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः
शापेनास्तं गमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्त्तुः ॥
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्य्याश्रमेषु ॥ १ ॥
तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्टः ॥
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥
तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः केतकाधानहेतो-
रन्तर्व्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ॥

---

१ यक्षः = देवयोनि विशेषः । विद्याधरोऽप्सरो यक्ष रक्षो गन्धर्व्वकिन्नराः
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ।

२ प्रथम दिवसे = पाठान्तरे "प्रशम दिवसे" ॥

३ केतकाधानहेतुः = केतक्या गर्भाधानस्य कारणम् ॥

॥ श्री ॥

मेघदूत पूर्वार्ध

सवय्या

१ कारज में उनमत्त भएं इक जक्ष दई सब खोइ बड़ाई
नारि तजे निज द्वादश मास कों सोंच बड़ो यह नाथ खवाई
जाइबस्यो गिरिराम के आश्रम शीतल छांह में गेह बनाई
जानकीस्नान कौ पावन नीर बहे चहुंओर जहां सुखदाई ॥

२ बसि ताही महीधर में विरही जब मास ककूक बिताइ गयो
भुजबन्द गए गिर सोरन के इतनो थकि दूबर गात भयो
फिर लागत मास असाढ लख्यो घन शैल पै सोहनो आइक्यो
झुक के मनहू गजराजबली गढढावन खेल मचाइ रह्यो ॥

३ केतकी गर्भ करावनहार पयोद पै दास कुबेर गयो है
अंतर में अंसवा भरके कछू बेर लों सोचत ठाडो भयो है

---

१ यक्ष एक प्रकार के देवता हैं जिनका स्वामी कुबेर है। एक यक्ष अपने काम में उन्मत्त होकर अपराधी ठैरा कुबेर ने कोप कर उसे बरस दिन का देश निकाला दिया इस्से उसकी सब बडाई जाती रही शाप के वश घर बार छोड़ वह रामगिरि पर्वत पर जा बसा (यह पहाड दक्खन में है इसी पर वनोवास के समय श्रीरामचन्द्र जानकी कुछ दिन रहे थे) ॥

२ उस पहाड में रहते जब कुछ महीने बीत गए तो वह विरह के दुःख में इतना दुबला होगया कि बांह में भुजबन्द भी न ठैरे असाढ़ लगते ही उस ने पहाड़ के सानु पर छाया हुआ बादल ऐसा देखा मानो कोई बड़ा हाथी झुककर गठी का परकोटा ढा रहा है ॥

३ केतकी सावन भादों में फूलती है इसलिये बादल उसके गर्भ का कारण कहलाता है उस बादल के सन्मुख खड़ा होकर यक्ष बहुत बेर तक कुछ सोचता

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किम्पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिता जीवितालम्बनार्थं
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ॥
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ॥
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

---

४ जीमूतेन = जलधरेण ॥

अर्घः = आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुलाः
यवाः सिद्धार्थकं चैव अष्टाङ्गार्घ्यं प्रकीर्त्तितम् ॥

अपिच

रक्तविल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधिदूर्व्वाकुशैस्तिलैः
सामान्यः सर्व्व देवानामर्घोऽयं परिकीर्त्तितः ॥

कंठलगे सुखियान हू के चित धीरज देखि घटा न रह्यो है
बात कहा फिर ऐसेन की जिन मीत तें दूर बसेरो लयो है ॥

४ सांवन के ढिग आवन में वह नारि के प्रान बचावन काज
बादर दूत बनावन कों कुशलात संदेस पठावन काज
लै कर कूटज फूल नए मनकल्पित अर्घ बनावन काज
बोलन प्रीति के बोल लग्यो हंसते मुख नेह बढावन काज ॥

घनाक्षरी

५ घाम धूम नीर औ समीरन कौ सन्निपात
ऐसो जड़ मेघ कहा दूत काज करि है
नेह कौ संदेसो हाथ चातुर पठैवे जोग
बदरा बिचारो कौन रीति सों उचरि है
बाढ़ी उत्कंठा जक्ष बुद्धि बिसरानी सब
वाही सों निहोरे जानि यातें काज सरि है
काम के तपाए मतिहीन हैं सदाईं तिन्हे
चेत औ अचेत कहा भेद जानिपरि है ॥

रहा इस पर कवि कहता है कि घटा उमड़ने के समय संजोगियों का भी चित्त ठिकाने नहीं रहता फिर वियोगियों की क्या दशा न होती होगी ॥

४ जब सावन आया यक्ष ने जाना कि यक्षिणी बिरह की ताप में मर जायगी इसलिये उसके पास अपनी कुशल का संदेसा भेजना चाहिये यह सोचकर मन में ठानी कि बादल के हाथ संदेसा भेजूंगा बादल को प्रसन्न करने के लिये कुछ बन के फूलों का अर्घ हाथ में लेकर हंसते मुख प्रीति की बातें कहने लगा ॥

५ बादल तो धूप और धुंआ और पानी और पवन मिलकर बन्ता है और प्रेम का संदेसा लेजाने को बड़ा चतुर मनुष्य चाहिये जक्ष को अपने चाव में न सूझी कि बादल क्योंकर संदेसा पहुंचावेगा इस पर कवि कहता है कि काम के सताए पुरुष स्वभाव ही से मूर्ख होते हैं चेत औ अचेत में भेद नहीं जान सकते ॥

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ॥
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याञ्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत् पयोद प्रियाया-
स्सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ॥
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

---

६ पुष्करावर्तकाः = पुष्करा नाम ते मेघा बृहतस्तोयमत्सराः
पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥
मघोनः प्रकृतिपुरुषं = इन्द्रस्य प्रधान पुरुषं ॥

७ सन्तप्तानाम् = आतपेन वा प्रवासविरहेण वा संज्वरितानाम् ॥
धनपतिः = कुबेरः ॥

६ पुष्करावर्तक हैं प्रसिद्ध लोक लोकन में
जन्म तिनही के वंश नीके माहिं पायो है
इच्छारूप धारन की गति है दई ने दई
मंची सुरराजहू ने आपनो बनायो है
एते गुन जानि तोपै मंगिता भयोहूं मेघ
बन्धुन तें दूर मोहि विधि ने बसायो है
सज्जन पै मांगिबो बिनाहू सरें काज भलो
नीच पै सरें हूं काज आछो ना बतायो है ॥

७ तू सदां सहाई तनताप के सताएन कौ
मैं भयो वियोगी हूं कुबेर कोप पाइ के
क्षेम कौ संदेसो यातें मेरो प्रानप्यारी पास
अलकापुरी में मीत दीजो पहुंचाइके
नगरी बनी है वह आछी अवलोकें जोग
लीनो जक्षराजन सुवास जहां जाइके
बागन में बाहरें विराजें चन्दचूड जातें
नित्तही अटान रहैं चन्दछटा छाइके ॥

---

६ पुष्करावर्तक बादलों की एक उत्तम जाति है यक्ष कहता है कि हे मेघ मैं जानता हूं तू इसी जात का है और यह भी जानता हूं कि जैसा रूप चाहे तू धर सकता है और इन्द्र का सखा भी तू है इसलिये तुझ से याचना करने में मैं शंका नहीं करता सज्जन पुरुष से याचना पूरी भी न हो तो अच्छी है परन्तु नीच से पूरी भी हो जाय तो अच्छी नहीं ॥

७ यक्ष बादल से कहता है कि तू सदां दुःखियों का सहाई है और मैं कुबेर के शाप वश दुःखी हूं इसलिये तू मेरा संदेसा मेरी प्यारी के पास अलकापुरी पहुंचा दे वह सुन्दर नगरी देखने योग्य है यक्षनायक उस में बसते हैं बागों में शिवजी ठैरते हैं उन के मस्तक के चन्द्रमा की चांदनी से अलका के महल सदां उज्जल रहते हैं ॥

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ॥
कस्सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगर्व्वः ॥
गर्भाधानक्षमपरिचयं नूनमाबद्धमाला-
स्सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥ ९ ॥

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ॥
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

---

९ बर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुंसाङ्गिताः खगाः ॥
मृगा वा वामगा हृष्टाः सैन्यसम्मङ्गलप्रदाः ॥
सगर्व्वः = सहर्षः ॥

८ वातपंथ जात तोहि नारी परदेसिन की
बार बार देखेंगी अलकें करसों उठाइ
बालम के आवन की आसा उर लाइ लाइ
धीरज धरेंगी नैक पीर जियसों बिहाइ
आए तो समीप कोई नारि कों बिसारे नाहिं
बिरहा बिथा में नर जोपै अपनी बसाइ
ऐसो मन्दभागी मैं हूं दूसरो न और होइ
पराधीन वृत्ति हेत बैठो हूं सुख नसाइ ॥

दोहा

९ मन्द मन्द मारुत बहे जैसो तोहि सुहाइ ।
हरषित यह चातक मधुर बाएं बोल्यो आइ ॥
बगुली हू नभ में सुभग आईं बांधि कतार ।
गरभदान समरथ समझि देन तोहि मनुहार ॥
१० मग में तू रुकिहै नहीं लखि है भौजी जाइ ।
जीवति दिन गिनती करति पति भरता चित लाइ ॥
नेही हिरदो नारिको कोमल जैसो फूल ।
बिरह मांहि आसा करति ताहि बज्रसम तूल ॥

८ पवन के मार्ग में जाते हुए तुझे परदेसियों की स्त्रियां अपने खुले बाल मुख से हटा हटा कर बार बार देखेंगी (खुले बाल इसलिये हैं कि जिस स्त्री का पति परदेश गया हो उस को बेनी बांधना वर्जित है) बादल देख कर उन्हें भरोसा होगा कि अब हमारे पति घर आवेंगे क्योंकि बरसाकाल में अपनी स्त्री को विरह के दुःख में छोड़ना कोई नहीं चाहता है ऐसा मन्दभागी मैं ही हूं कि पराधीन होकर अपना सब सुख खो बैठा हूं ॥

९ मन्द मन्द पवन चलती है बाएं पर पपीहा बोलता है बगली आकाश में पंक्ति बांधकर आई हैं मानों तुझे गर्भ का दाता जान आदर देती हैं ये अच्छे अच्छे शगुन तेरे लिये हैं ॥

१० इन शगुनों के प्रताप से निश्चय है कि मार्ग में कुछ विघ्न तुझे न होगा और तू अपनी भावज अर्थात् मेरी स्त्री को जीती पावेगा वह मेरे शाप के दिन गिन्ती होगी स्त्री के कोमल हृदय को विरह में आसा कठोर करदेती है ॥

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्ज्जितं मानसोत्काः ॥
आकैलासाद्विसकिशलयच्छेदपाथेयवन्त-
स्सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसास्सहायाः ॥ ११ ॥

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ॥
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
संदेशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ॥
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपयुज्य ॥ १३ ॥

---

११ उच्छिलीन्ध्रातपत्राम् = शिलीन्ध्र एव छत्रं यस्याः तां ॥
विसकिशलयच्छेदपाथेयवन्तः = मृणालानां छेदैः शकलैः पाथेयवन्तः ॥

११ छत्रवती छिति कों करति उच्छलिन्ध्र उपजाइ ।
सो तेरी गरजन सुनत हंस छिऐं हुलसाइ ॥
मानसरोवर चलन कों कमलनाल लै पाथ ।
उडिहैं धुर कैलाश लों नभ मारग तो साथ ॥

१२ मांगि सीख गिरितुंग पै भरि मीतहिं अब अंक ।
पावन रघुपति चरन सों अंकित याको लंक ॥
जब जब तू यातें मिलत बहुत दिनन में आइ ।
प्रीति प्रगट तो में करे आंसू तप्त बहाइ ॥

कुंडलिया

१३ गैल बताऊं मेघ अब जिहिं चलि पावे चैन
फिर सुनियो संदेश मम कानन अति सुख दैन
कानन अति सुखदैन थके वा मग में जब तू
शिखरि शिखरि धरि पांव चालियो जलधर तब तू

---

११ बादल की गरज से उच्छलीन्ध्र अर्थात् खुमी उपजती है मानो पृथ्वी को छत्र मिलता है ऐसी गरज सुनकर राजहंसों को मानसरोवर जाने का उत्साह होगा मार्ग में खाने के लिये कमलनाल का पाथ अर्थात् तोसा लेकर कैलास तक वे तेरे साथ आकाश में उड़ते हुए जांयगे ॥

१२ अब तू इस ऊंचे पहाड़ से भेट कर और सीख मांग कर अलकापुरी को चल दे इस की पीठ पर श्रीरामचन्द्र के पुनीत चरनों के चिन्ह हैं और यह तेरा पुराना मित्र है बरस बरस दिन पीछे जब तू इस से मिलता है यह तत्ती भाप निकालता है मानो प्रीति के तत्ते आंसू गिराता है (तत्ते आंसू प्रीति के और ठंडे शोक के होते हैं) ॥ मेघ की और पर्वत की आपस में सहज मित्रता कवि लोग बांधा करते हैं आगे इस मेघदूत में कई जगह यह मित्रता दिखाई जावेगी ॥

१३ हे मेघ अब मैं पहले तुझे अलकापुरी का मार्ग बताता हूं जिस में चलकर तू सुख पावेगा फिर अपना संदेसा सुनाऊंगा उस मार्ग में जो तू थक जाय तो

अद्रेः शृङ्गं वहति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोच्छ्रायश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ॥
स्थानादस्मात् सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥ १४ ॥

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता-
द्वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य ॥
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ १५ ॥

---

१४ सरसनिचुलात् = आर्द्रस्थल वेतसाः यस्मिन् तस्मात् ॥
दिङ्नागानां = दिग्गजानां ॥

ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
पुष्पदन्तः सार्व्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥

अवलेपान् = गर्व्वान् ॥
१५ आखण्डलस्य = इन्द्रस्य ॥

भूख लगे सोता मिलें उथरे हू बिन मैल
पी तिन कौ पानी तुरत लीजो अपनी गैल ॥

१४ जात तोहि नभ में निरखि कहिहैं सीस उठाइ
मुग्धा सिद्धबधू चकित आपस में बतराइ
आपस में बतराइ बड़ो अचरज कौ लेखो
पवन उड़ाए जात खंड परवत कौ देखो
निचुल सरस यह भूमि तजि अब उत्तर चलि भ्रात
मेटत मद दिग्गजन के नभ मारग में जात ॥

१५ सोहै पूरब ओर यह रतनजाल अनुमान
निकसत बांबी तें भलो इन्द्रचाप रुचदान
इन्द्रचाप रुचदान जासु मिलि तोतन कारो
पावे छबि अनुकूल लगे नैनन कों प्यारो
मोरचन्द्रिका सुरंग संग जैसे मन मोहै
गोपवेष गोविन्द अधिक स्यामल तन सोहै ॥

पहाड़ों के शिखर पर पांव धरकर विश्राम करता हुआ चलियो और भूख लगे तो उथले सोतों का जल पीलीजो ॥

१४ आकाश में तुझे जाता हुआ देखकर सिद्धों की मुग्धा स्त्री आपस में चकित सी होकर कहेंगी कि क्या यह परवत का टुकड़ा है जो पवन में उड़ा जाता है (सिद्ध एक प्रकार के देवता हैं जो आकाश में रहते हैं) अब तू इस आले स्थान से जहां बेत उपजते हैं उत्तर को चल दिग्गजों को जो अपने बड़े शरीर का घमंड है वह घमंड उन का तुझे देख कर मिट जायगा क्योंकि वे देखेंगे कि यह हम से भी बड़ा आया ॥

१५ लोक प्रसिद्ध बात है कि इन्द्र धनुष सांप की बांबी से निकलता है ऐसा ही कालिदास भी कहते हैं और उपमा देते हैं कि काला बादल रंग बिरंगे धनुष से वह शोभा पावेगा जो मोरचन्द्रिका से श्रीकृष्ण का श्याम शरीर पाता है ॥

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ॥
सद्यस्सीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित् पश्चाद्व्रज लघुगतिः किञ्चिदेवोत्तरेण ॥ १६ ॥

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ॥
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किम्पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १७ ॥

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ॥
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवश्शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १८ ॥

---

१६ त्वय्यायत्तं = त्वयि आयत्तं = ते अधीनं ॥
भ्रूविकारानभिज्ञैः = भ्रुकुटिविलासानामज्ञातृभिः ॥

१७ वनोपप्लवं = दवाग्निं ॥

१८ अमरमिथुनप्रेक्षणीयां = खेचरदम्पतीदर्शनीयां ॥

१६ करके दृग नेातन लखें भोरे भरे पियार
ग्रामबधू जिय जानिके तू कृषिफल दातार
तू कृषिफल दातार पहुंचियो मालभूमि वर
नए जुते जहां खेत सुगंधित होइहैं अधिकतर ॥
ककु पच्छिम दिश पलटि शीघ्रगति तन में धरके
चलियो जलधर मीत फेर उत्तर मुख करके ॥

सोरठा

१७ अम्रकूट तनताप मेटी तैं बहुधा बरसि
धरे सीस तोहि आप सेा तेरेा मग श्रमहरन ॥
मीतहिं आएं द्वार बिमुख होत नहिं नीचहू
सुमिरि तासु उपकार ऊंच बिमुख कब ह्वै सके ॥

१८ रह्यो चहूंदिश छाइ बनअम्बा पकि शैल वह
तासिर जब तू जाइ बैठै चिक्कन चिकुर रंग ॥
तुरत लहै छबि सेाइ जेाग देवदम्पति लखन
मनहु स्यामता होइ गेारे भूमि उरेाज बिच ॥

---

१६ हे मेघ तुझे गांव की स्त्रियां यह जानकर कि खेती का फल इसी के आधीन है अपनी नेह भरी आंखों से चाव सहित देखेंगी तू मालदेस को जाना जहां नए जुते खेतों से सुहावनी सुगंध निकलती होगी फिर थोड़ा सा पच्छिम ओर पलट कर तुरन्त उत्तर को चलदेना ॥

१७ तैंने मेह बरसा कर बहुत बार आम्रकूट पर्वत की ताप मिटाई है इसलिये जब तू उस के पास पहुंचेगा वह तेरी थकावट मिटाने को तुझे अपने सिर पर रख लेगा क्योंकि जिसने कुछ उपकार पहले कर लिया हो उसे द्वार पर आए सब कोई आदर देता है ॥

१८ वह पहाड़ पक्के आंबों से छाया हुआ पीला दीखता होगा उस की शिखर पर जब तू चिकने बालों के समान काला जाकर बैठेगा तो ऐसी शोभा होगी मानो पृथ्वी के पयोधर में स्यामता है इस शोभा को देवता अपनी स्त्रियों सहित देख के प्रसन्न होंगे ॥

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमांश्चित्रकूट-
स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यतिश्लाघमानः ॥
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निं
सद्भावार्द्रः फलति नचिरेणोपकारो महत्सु ॥ १९ ॥

स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्त्तं
तोयोत्सर्गाद्द्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ॥
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥ २० ॥

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ॥
अन्तस्सारं घन तुलयितुं नानिलश्शक्ष्यति त्वां
रिक्तस्सर्वो भवति हि लघुः पूर्णतागौरवाय ॥ २१ ॥

---

१९ नैदाघम् = निदाघर्तुभवम् ॥ (निदाघः ग्रीष्मः) ॥

२० रेवां = नर्म्मदा ॥
रेवा तु नर्म्मदा सोमोद्भवा मेखलकन्यका इत्यमरः ॥
भक्तिच्छेदः = रेखा रचना ॥

२१ तिक्तैः = सुगन्धिभिः ॥
वासितं = सुरभितं ॥
प्रतिहतरयं = प्रतिरुद्धो वेगो यस्य तत् ॥

१९ थके पंथ चलि गात सन्मुख आवत देखि तोहि
चित्रकूट विख्यात ऊंचे सिर धरिहै जलद ॥
तुहु करि धारासार हरे तासु ग्रीषम अगिनि
सज्जन संग उपकार फलत बिलम्ब न कछु करे ॥

२० बिलमि तहां ककुबार विहरति जहां बनचरबधू
करियो धारासार फिर द्रुतगति मग लांघियो ॥
लखियो रेवा जाइ बिन्ध्य मिलन पै यों बहे
मानहु दई रचाइ गजतन रजरेखा बिशद ॥

चौपाई

२१ लै चलियो वा नदि के नीरा। रुकि जमुनीकुंजन भए धीरा ॥
बन हाथिन जिन में मदत्यागे। अधिक सुगंधित तिहिं हित लागे॥
अंतर जब तेरो भरि जाई। पवनहु रोकि न तोहि सकाई ॥
रीते सबहि तुच्छ जगमाहीं। बिन पूरनता गौरव नाहीं ॥

१९ चित्रकूट पर्वत भी तुझे थका देखकर अपने सिर पर उठालेगा फिर तू तुरन्त पानी बरसाकर उस की निदाघ अग्नि को मिटावेगा क्योंकि सज्जन के साथ जो भलाई की जाय उस का फल तुरन्त मिलता है (निदाघ = जेठ असाढ़ की धूप) ॥

२० जिस की कुंजों में बनवासी लोगों की स्त्रियां बिहार करती हैं उस पहाड़ में थोड़ी बेर ठैरकर और जल बरसने से शीघ्रगति होकर तू मार्ग उलांघियो आगे तुझे रेवा (नर्मदा) नदी मिलेगी जो बिन्ध्याचल में बहती हुई दूर से ऐसी दीखती है मानो हाथी के शरीर में गोपीचन्दन की लकीरों से सिंगार किया है ॥

२१ उस रेवा नदी का जल जामन के रूखों में रुक रुक कर धीरे चलता है और बन के हाथी उस में न्हाते हैं उन के मद से सुगन्धित है उसी जल को पीकर तू आगे चलियो जल पीने से तू भारी हो जायगा इस लिये मार्ग में तुझे पवन न रोक सकेगी ॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केशरैरर्द्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ॥
दग्धारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्या-
श्चारङ्गास्ते जललवमुचस्सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २२ ॥

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान् वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ॥
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धा-
स्सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥ २३ ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्व्वते पर्व्वते ते ॥
शुक्लापाङ्गैस्सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २४ ॥

---

२३ वीक्षमाणाः = कौतुकात् पश्यन्तः ॥

२४ ककुभसुरभौ = अर्जुन सुगन्धिनि ॥
केकाः = केका वाणी मयूरस्य ॥
प्रत्युद्यातः = कृताथित्यः ॥

२२ मोरहु लखि कदम्ब मन भाए। हरित स्याम मकरंद सुहाए॥
कूलन माहिं निरखि कन्दलिका। नवकुसमित बहु सुन्दर कलिका॥
दावानल भसमितभुमि बन में। सूंघि सुगन्ध मगनह्वै मन में॥
जलद तोहि अति आदर दैहैं। आगे उडि उडि पंथ दिखैहैं॥

२३ सिद्ध निरखिहैं तो संग आवत। चातक वारि बूंद रट लावत॥
एक ओर बगपांति सुहावें। गिननी कर कर तिन्हे दिखावें॥
निकट जाइ जब तू कछू गरजे। हियो सहज उनकौ तब लरजे॥
तियन भेटि तेरे गुन गावें। कांपति चोंकति अंक लगावें॥

२४ यद्यपि मम प्यारो हित लागे। तू चहे चलन मन्दगति त्यागे॥
तदपि डरों कहुं बिलमि न जाई। ककुभ सुगन्धित शैलन भाई॥
सुनि आदरयुत बोल शिखिनके। सजल नैन कोए सित जिनके॥
का बिधि तुरत गमन होइ तेरो। इहिं शंका व्याकुल मन मेरो॥

---

२२ तेरे बरसने से कदम्बों में काले पीले केशर सहित फूल लगेंगे कछारों में कन्दली कल्याइंगी दावानल से जले हुए बन में सुगंध उठेगी इन को देख और सूंघकर मोर मगन होंगे तेरे आगे उड़ उड़ कर मार्ग दिखावेंगे (बादल की और मोर की सहज मित्रता है)॥

२३ सिद्ध जात के देवता (जो आकाश में रहते हैं) तेरे साथ आते हुए मेह की बूंद के प्यासे पपीहों को बड़े चाव से देखेंगे और बगलों की पंक्ति को गिन गिन कर आपस में दिखावेंगे तेरी गरज से डरती चोंकती हुई अपनी स्त्रियों को कंठ लगा कर तेरे गुन गावेंगे॥

२४ हे मेघ तू मेरी प्यारी के पास संदेसा पहुंचाने को यद्यपि शीघ्र जाना चाहेगा फिर भी मुझे डर है कि पहाड़ों में ककुभ (अर्जुन) की अच्छी सुगन्ध सूंघ कर तू कहीं ठैर न जाय और यह भी डर है कि श्वेत और सजल कोयों वाले मोरों की आदर भरी कूक सुनकर तेरा तुरन्त चलना क्योंकर होगा॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैस्सूचिभिन्नै-
र्नीडारम्भे गृहबलिभुजामाकुलग्राम चैत्याः ॥
त्वय्यासन्ने फलपरिणतिश्यामजम्बूवनान्ता-
स्सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः २५ ॥

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमतिमहत् कामुकत्वस्य लब्धा ॥
तीरोपान्तस्तनित सुभगं पास्यसि स्वादुयुक्तं
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेचवत्याश्चलोर्म्मि ॥ २६ ॥

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्सम्पर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ॥
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २७ ॥

---

२५ नीडः= पक्षिगृहं ॥
दशार्णाः= नाम देशः ॥

२६ फलमतिमहत्= "कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यत" इतिभावः ॥

२७ नीचैराख्यं गिरिम्= नीचगिरिम् ॥

२५ तो पहुंचत होइ देश दशारण । कछु दिन हंस बसन को कारण ॥
कलित केतकी जहं मन मोहैं । उपवन सीम पंडुरंग सोहैं ॥
नीड़ समय पंछीगण आवें । रखन माहिं कलोल मचावें ॥
स्याम बरण सुन्दर दुतिमन्ता । जमुनीफल लागे बन अंता ॥

२६ बिदिशा नाम तहां रजधानी । देश देश विख्यात बखानी ॥
तांढिंग पहुंचि जबहि तू जैहै । रस बिलास को अतिफल पैहै ॥
वेचवती तट गरजत धीरा । पीजो मधुर तरंगित नीरा ॥
मनहुं कुटिल भ्रकुटीयुत मुखतें । अधरामृत लीनो अति सुखतें ॥

सवय्या

२७ है विदिशा ढिंग नीचगिरी घन ह्वां करियो बिसराम तू जादूके ॥
तोहि मिलें पुलकात लखे वह मानो कदम्ब के फूलन छादूके ॥
बारबधू अंगरागसुगन्ध गुफानतें व्यारि के संग उडादूके ॥
दैहै बताइ बिचार करें यहां नागर छैल नए नए आदूके ॥

---

२५ तेरे पहुंचने से दशारन देश में कुछ दिन हंस ठैरेंगे उस देश में केतकी बहुत होती हैं उन के फूलों से बागों की सीमा पीली दीखेंगी गांव निकट के रूखों में घोंसला बनाने के दिनों पखेरू कलोल करेंगे जामुन के पक्के फलों से वन के किनारे स्याम दिखाई देंगे ॥

२६ दशारन की राजधानी विदिशा (अर्थात भेलसा) है जहां वेत्रवती नदी बहती है तू मन्द मन्द गरज कर उस तरंगित नदी का जल ऐसे लेगा मानो भौंह चढ़ाती हुई नादका का अधरामृत लिया और यही रसबिलास का उत्तम फल है (कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते) कवि लोग मेघ को नायक और नदी को नादका बांधा करते हैं ॥

२७ विदिशा के निकट नीचगिरि नाम पर्वत है उस पर तू बिश्राम लीजो वह फूले हुए कदम्बों से ऐसा दीखेगा मानो तेरे मिलाप से पुलकित है उस की गुफाओं से वेश्याओं के अंगराग की सुगन्धि निकलती है इस से जाना जाता है कि नगर के छैला यहां आकर विहार करते हैं ॥

विश्रान्तस्सन् व्रज नगनदीतीरजातानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ॥
गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावी मुखानाम् २८ ॥
वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मास्मभूरुज्जयिन्याः ॥
विद्युद्दामस्फुरणचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितो ऽसि ॥ २९ ॥
वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्त्तनाभेः ॥
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरं सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ ३० ॥

---

२८ पुष्पलावी = पुष्पावचायिका ॥

२९ उज्जयिनी स्याद्विशालाऽवन्ती पुष्पकरण्डिनी ॥

३० निर्विन्ध्या = नाम नदी ॥
विभ्रमः = विलासः ॥

२८ ठैरिके नैक तहां चलियो घन सींचत नीर नई बुंदियान तें
बागन बीच नदी नग तीरपै छाइ चमेली रहीं कलियान तें
दै छिन छांह कौ दान सखा पहचानि करै किन मालिनियान तें
कान के फूल गए जिनके कुम्हिलाइ से पोंछत स्वेद मुखान तें

२९ तो दिशउत्तर चालनहार के मारग केतौहू फेर परे किन
पै उज्जयनि के आछे अटा परसे बिन तू कितहू चलियो जिन
चंचल नैन वहां अबलान के बिज्जुछटा चकचोंधे करै छिन
जो न लख्यो उन नैनन तू छकनाछक देह धरेही फिरे गिन ॥

३० रस बीचहिं लै चलियो निरविन्ध्य कौ जो मग तेरो निहारती है
कटि किंकिनि मानो बिहंग की पांति तरंग उठे झनकारती है
मनभामनी चालि अनोखी चले निज भोंर की नाभि उघारती है
बतरानि है मीतसों आदि यही तिया विभ्रम मोहनी डारती है

२८ वहां थोड़ी बेर ठैर कर तू नग नदी तीर के बगीचों में चमेलियों को अपनी नई बूंदों से सींचता हुआ चलियो दुपहरी में मालिन फूल बीनती होंगी मुख का पसीना पोंछते पोंछते कानों पर रक्खे हुए फूल के गहने उन के कुम्हला गए होंगे तेरी छाया पड़ने से सुख पाकर वे तेरा गुन मानेंगी ॥

२९ तू अलकापुरी को जानेवाला है वह उत्तर दिशा में है उज्जयनि होकर जायगा तो कुछ फेर पड़ेगा परन्तु फेर पड़े तो पड़े उस नगरी को देखे बिना मत रहियो वहां स्त्रियों के नेत्र बड़े चंचल हैं तेरी बिजली से चोंधकर अधिक शोभायमान हो जांयगे जो उन नेत्रों ने तुझे न देखा तो तेरा देह धरनाही अकारथ है ॥

३० मार्ग में निरविन्ध्या नदी मिलेगी उस के तट पर जो हंसों की पंक्ति बैठी है सोई मानो उस की कमर की तागड़ी है हंसों का बोलना है सोई तागड़ी के घुंघुरुओं की झनकार है उस की चाल भी अनोखी है अर्थात चक्कर खाकर चलती है और उस में भंवर पड़ता है सोई मानो तुझे ललचाने को वह अपनी नाभ दिखाती है स्त्री का स्वभाव ही है कि बिना बात चीत किये भी अपने हाव भाव से मित्र का मन मोहलेती है ॥

वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिः शीर्णपर्णैः ॥
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ ३१ ॥

प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धां
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ॥
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥ ३२ ॥

---

३१ सिन्धुः = नाम नदी ॥
व्यञ्जयन्ती = प्रकाशयन्ती ॥

३२ अवन्तीम् = उज्जयिनीम् ॥
उदयन = नाम राजा वत्सराज इति प्रसिद्धः ॥
पूर्व्वोद्दिष्टां = पूर्व्वोक्तां ॥
श्रीविशालां = सम्पत्तिमहतीम् ॥
विशालां पुरीं= उज्जयिनीम् ॥

३१ जल सूखत पातरी सिन्धु भई तन बेनी सरी को बनावती है
तटरूखन तें झरें पात पके मनो पीयरो रंग दिखावती है
धरि सोचनो रूप बियोगिनि कौ भले तो में सुहाग मनावती है
करियो घन सो बिधि वाके लिये जोकि छीनता ऐसी मिटावती है

घनाक्षरी

३२ ख्यात है अवन्ती जहां केतेक निवास करें
पंडित जनैय्या उदयन की कथान के
जाइके तहां प्रवेश कीजो वा विशाला बीच
देख लीजो शोभा साज सकल जिहान के
भूमितें गए जो नर देवलोक भोगिवे कों
करि करि काज बड़े धर्म औ प्रमान के
तेई फेरि आए लाए सारभाग स्वर्ग ही कौ
प्रबल प्रताप मनो शेष पुन्न दान के ॥

---

३१ आगे सिन्धु नदी मिलेगी जो तेरे लिये वियोगिनि का रूप धर रही है जेठ मास बीत चुका है इस से सूखकर पतली हो गई है मानो वियोग की वेनी बांधी है तट के रूखों से पीले पत्ते गिरते हैं उन से रंग पीला दीखता है जैसा वियोगिनों का होता है तू उसे अपना रस (जल) दीजो जिस से उस की दुर्बलता मिट जाइगी ॥

३२ उदयन नाम एक बड़ा प्रतापी राजा उज्जयन में हुआ है उस की बहुत सी कथा प्रसिद्ध हैं इन कथाओं के जानने वाले पंडित अवन्ती में बहुत वसते हैं उसी नगरी में विशाला नाम मुख्य स्थान है जहां पहुंचकर तू सब जगत की शोभा एक ही ठौर देख लेगा वह जगह ऐसी उत्तम है मानो स्वर्ग का एक मुख्य टुकड़ा है जिसे अच्छे लोग अपने पुन्यों के प्रताप से पृथ्वी पर ले आए हैं ॥

दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमंचीकषायः ॥
यच्च स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूल-
स्सिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ३३ ॥

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ॥
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखिन्नान्तरात्मा
त्यक्त्वा खेदं ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३४ ॥

---

३३ सिप्रा = नाम नदी ॥

३४ जालोद्गीर्णैः=गवाक्ष मार्गनिर्गतैः ॥
केशसंस्कारधूपैः=वनिता केश वासनार्थैर्गन्धद्रव्य धूपैः ॥

३३ बात सिपरा कौ मिलि प्रात खिले कंजन तें
होत नित्त नीको मनरंजन सुगन्धमान
दीरघ करतु मदभरो कूक हंसन की
सरस रसीली अति सुख सरसावे कान
अंगन परसि रतिअन्त कौ मिटावे खेद
मन्द मन्द धावे यातें भावत नीको तियान
एते गुन वारो प्यारो मारुत अवन्तिका को
बिनती में चातुर है प्रीतम स्याने समान ॥

३४ उडत भरोखन तें केशगंध धूप जहां
होइ अंग तेरो पुष्ट मेघ वाहि पीजो तू
आदर हू देंगे नाचि नाचि के घरेलू मोर
प्रीति सतकार मीत सोई मानलीजो तू
सोंधि रहे फूलनतें भौंन हैं अवन्तिका के
चैन थके गातन कों नैक तहां दीजो तू
लखित तियान पांव पंकज महावर सों
अंकित अटान जाइ बिसराम कीजो तू ॥

---

३३ सिपरा नदी का पवन प्रातःकाल खिले कमलों से मिलकर सुगन्धित होता है सारसों की कूक बढ़ाता है स्त्रियों के पसीने सुखाता है ये गुन उस में ऐसे हैं जैसे चतुर नायक में होते हैं ॥

३४ अवन्ती के महलों में स्त्रियां अपने केशों को अगर चन्दन इत्यादि के धुएं से सुगन्धित करती हैं वही धुआं झरोखों से उड़ता है उसे तू पी लेगा तो तेरा शरीर पुष्ट हो जायगा पालतू मोर तुझे आदर देने के लिये नाचेंगे वहां फूलों से महल महक रहे हैं चतुर स्त्रियों के महावर लगे पैरों के चिन्ह अटों की छत पर लगे हैं उन्ही छतों पर तू बिसराम लीजो ॥

भर्त्तुः कण्ठच्छविरिति गणैस्सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डेश्वरस्य ॥
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडाविरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥ ३५ ॥

अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदभ्येति भानुः ॥
कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्ज्जितानाम् ॥ ३६ ॥

---

३५ चण्डेश्वरः = चण्डाया ईश्वरः अर्थात् पार्व्वती पतिः ॥
गन्धवती = नाम नदी ॥

३६ महाकालं = महाकालाख्यं स्थानं ॥

आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् ।
मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवाप्नुयात् ॥

आमन्द्रं = ईषद्गम्भीरं ॥

३५ नाथ के गरे की छवि देखि अंग तेरे माहिं
आदर हू देंगे तोहि गण त्रिपुरारी के
चंडेश्वर धाम पुन्य पावन परसि फेरि
दरशन लीजो त्रिभुवनअधिकारी के
करें जलकेलि नारि नागरि नवेली जहां
गंधित है नीर गंधवती सिन्धुप्यारी के
नीरन तें मोद औ कमोदन तें लै पराग
पवन झकोरे नित्त रूख बाग वारी के ॥

३६ साँझ के बिना जो कहूं पहुंचे तू और काल
महाकालजू के पुन्य आश्रम में जाइके
ठैरियो तहांई ईठ भानु रहे जोलों दीठ
दिवस उजारो रहे छिति छहराइके
होइ फेरि सन्ध्यावलि पूजा शिवशंकर की
दुन्दुभि की ठौर दीजो गरज सुनाइके
मन्द मन्द घोरन कौ पावेगौ फल अखंड
शम्भू वरदाई देव देव कों रिझाइके ॥

---

३५ तेरे नीले वर्ण को अपने स्वामी के गले की अनुहार देखकर शिवजी के गण तुझे आदर देंगे तू चंडेश्वर महादेव का दरशन कीजो वहीं गन्धवती नदी है जिस में कस्तूरी इत्यादि का उबटन लगा कर स्त्रियां नहाती हैं इस से उस का जल सुगन्धित है उसी जल की सुगन्ध और नदी के कमलों का पराग लिये पवन वहां के बगीचों में वृक्षों को झकोरती रहती है ॥

३६ जो तू सन्ध्याकाल से पहले अथवा पीछे महाकाल के मन्दिर पै पहुंचे तो सन्ध्या आरती के समय तक वहीं ठैरियो जब आरती होने लगे तू मन्दा मन्दा गरजियो तेरी गरज को दुन्दुभी का शब्द जानकर शिवजी प्रसन्न होंगे ॥

पादन्यासक्वणितरसनास्तच्च लीलावधूतैः
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ॥
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ति त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥ ३७ ॥

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीन-
स्सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजवापुष्परक्तं दधानः ॥
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥ ३८ ॥

---

३७ आमोक्ष्यन्ति इत्यादि = आमन्द्राणां गर्ज्जितानामिदम्फलम् ॥

३८ नागाजिनेच्छां हर = गजचर्म धारणेच्छां निवर्तय त्वमेव तत्स्थाने भवेति भावः ॥
स्तिमितं = निश्चलं

३७ नाचति नवेली जहां वेश्या अलबेलीबाल
किंकिनी बजति पग धरत सुहावनी
ढोरिरहीं ठाडी चोंर रत्नजडी डांडिन के
थकित भुजाहैं करें लीला ललचावनी
जादू नख रेखन में उनके परेंगी जब
नई बूंद तेरी घन सुख सरसावनी
बडे से कटाच्छ तोपै भ्रमरावलीसमान
डारेंगी सनेहभरे वेई मनभावनी ॥

३८ बांधि फेरि मंडल तू लेगो जब छाइ मीत
लांबीसी भुजान रूप ऊंचे रूखवारो वन
फूल है जवा कौ नयो ता समान लालरंग
तेज सांझकाल हू कौ धारिलैहै कारेतन
नृत्यसमै ओढ्यो चहैं आलो गजचर्म नाथ
देखि तोहि भूलजाइ ताकौ खरो प्यारोपन
ग्लानि के मिटेते स्वस्थचित्त ह्वै भवानी तोहि
प्यार सेां लखेंगी आज हरष्यो हमारो मन ॥

---

३७ उस मन्दिर में वेश्या नाचती होंगी उनके नखच्छदों में तेरी बूंद पड़ने से सुख होगा इसलिये तुझे वे बड़े प्यार से कटाक्ष करके देखेंगी उनके कटाक्ष ऐसे हैं मानो भौरों की पंक्ति ॥

३८ जब तू ऊंचे ऊंचे रूखों के वन पर छा जायगा और सन्ध्या की अरुणता का प्रतिबिम्ब तेरे काले शरीर में झलकेगा तो तू ऐसा दिखाई देगा मानो लोहू टपकता हुआ हाथी का चमड़ा है तांडव नृत्य के समय शिवजी की इच्छा हाथी का आला चाम ओढ़ने की होती है तुझे देखकर वह इच्छा पूरी हो जायगी पार्वती जी को जो ग्लानि लोहू टपकता गजचर्म देखने से होती है वह न होगी वे तुझे प्यार की दृष्टि से देखेंगी ॥

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र रात्रौ
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ॥
सौदामिन्या कनककनिकषच्छायया दर्शयोर्व्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा च भूर्विक्लवास्ताः ॥ ३९ ॥

तां कस्याञ्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः ॥
दृष्टे सूर्य्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ४० ॥

---

३९ विद्युच्छायया मार्गं दर्शय किन्तु तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां
वृष्टिगर्ज्जिताभ्यां शब्दायमानो मास्मभूः ॥

४० भवन वलभिः = गृहाच्छादनोपरिभागः ॥
पारावतः = कपोतः ॥

सवय्या

३९ मीत के मन्दिर जात चली तहां
केती मिलें तोहि रात में नारी
मारग सूझ तिन्हे न परै जब
सूचिकाभेदि झुके अंधियारी
कंचनरेख कसोटी सी दामिनि
तू चमकाइ दिखाइ अगारी
कीजियो पै जिनि मेह की घोर
मरें अबला अकुलाइ बिचारी ॥
४० थक जाइगी दामिनि तेरी तिया
बहुवेर लों हास विलास करे
टिक रात में लीजियो काहू अटा
जहां सोवत होइ परेवा परे
दिन जगत फेर उतै चलियो
जित चालन काज रहे दगरे
सहतात कहां नर वे जग में
जिन मीत के कारज सीस धरे ॥

३९ अवन्ती में तुझे बहुत सी अभिसारिका नाइका रात में अपने अपने प्रीतमों के पास जाती हुई मिलेंगी तेरे पहुंचने से अंधेरी ऐसी गाढ़ी झुकेगी मानो सुई से छिद जाइगी जब उस अंधेरी में उनको मार्ग न सूझे तो तू उनपर दया करके अपनी बिजली ऐसी चमका दीजो जैसे काली कसौटी पै सोने की लकीर होती है परन्तु मेह की घोर मत कीजो नहीं तो वे घबड़ा जाइंगी ॥
४० चमकते चमकते तेरी प्यारी बिजली थक जाइगी इसलिये किसी एकान्त महल पर जहां खटका इतना भी न हो कि सोते हुए कपोत जाग पड़ें तू रात में विसराम करलीजो फिर प्रातःकाल अलका की गैल लीजो क्योंकि जिस ने मित्र का कारज अपने सिर लिया उस को उस कारज के होने तक सस्ताना नहीं मिलता ॥

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ॥
प्रालेयास्रं कमलवदनात् सोऽपि हर्त्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि करयमि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ ४१ ॥

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ॥
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्य्या-
न्मोघीकर्त्तुं चटुलसफरोद्वर्त्तनप्रेक्षितानि ॥ ४२ ॥

---

४१ प्रत्यावृत्तः = प्रत्यागतः ॥

४२ गम्भीरा = नामनदी ॥
मोघी = विफली ॥
सफरः = मीनः ॥
उद्वर्तनं = उल्लुण्ठनं ॥

४१ भोर भऐं बनिता खंडितान के
मीत मिलें अंसवा पुछ जात हैं
छोडियो यातें तुरन्तहि सो मग
जा मग आवत भानु प्रभात हैं
भानुहू ऐहैं मिटावन जो
नलिनी मुख ओस के आंसू दिखात हैं
रोकियो ना उनकी किरनें
अनखाइ बडे अनखान की बात हैं ॥

४२ अति उज्जल नीर गंभीरा नदी
निरदोष हिये के समान धरै
मनभावन तो प्रतिबिम्ब सुहावन
ता जल जादू परैही परै
फिर का बिधि होइगो जोग जु तू
निठुराई सखा इतनी पकरै
सफरी गति चंचल स्वच्छ सरोज सी
वाकी चितौनि निरास करै ॥

---

४१ प्रात का समय ऐसा है कि उस में खंडिता नायकाओं का क्लेश उन के प्रीतम आकर मिटाते हैं और सूरज देवता भी अपनी प्यारी कमलिनी के मुख से ओस के आंसू पोंछने आते हैं इसलिये तुझे चाहिये कि उस समय सूरज का मार्ग न रोके जो रोकेगा तो सूरज तुझपै कोप करेंगे और खंडिता नायका क्लेश में रहेंगी ॥

४२ गंभीरा नदी का जल ऐसा उज्जल है मानो स्त्री का निर्दोष हृदय और उस में सफरी मछलियों की झपट है सोई मानो कमल समान स्वच्छ नेत्रों के कटाक्ष हैं उस जलरूपी हृदय में जब तू प्रतिबिम्ब रूप से प्रवेश करलेगा फिर क्योंकर ऐसा कठोर हो सकेगा कि उन कटाक्षों को देखा अनदेखा करके चलाजाय ॥

तस्याः किञ्चित् करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ॥
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥ ४३ ॥

त्वन्निस्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ॥
नीचैर्व्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्व्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४४ ॥

तच स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैस्स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ॥

---

४३ वानीरं = वेतसं ॥
विवृतजघनाम् = प्रकटी कृतं जघनं यया ताम् ॥

४४ देवपूर्व्वं गिरिम् = देवगिरिम् ॥
काननोदुम्बराणां परिणमयिता = वन जन्तुफलानां परिपाकयिता ॥

४५ स्कन्दः = पार्व्वती नन्दनस्स्कन्दः सेनानीरग्निभूर्गुहः ।
कार्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः ॥

दोहा

४३ तट सों उठि वाको सलिल लग्यो शाख वानीर।
कर पकरत सरक्यो मनो कटितें नीलो चीर ॥
लिये ताहि का विधि बने प्यारे तेरो गौन।
नगन जांघ के तजन कों रसिथासमरथ कौन ॥

४४ तो बरसत भुमि गंध मिलि होइ पवन रमनीय।
बनगूलर पकवन प्रवल श्रवन सुभग गजप्रीय ॥
शीतल मन्द सुगन्ध वह करि है पग पग सेव।
जब मारग में तू चले पहुंचन कों गिरि देव ॥

सवय्या

४५ नित्त निवास कुमार करें तहां
तू उन कों अन्हवाइयो जाइके
पुष्पमई बदरा बनके
नभगंग मिले फुलवा बरसाइके

---

४३ नदी को कवि ने प्रवत्स्यत् पतिका नाइका बनाया है उस का नीला जल है सोई नील वस्त्र है तरंग से उठ कर जो जल वेत की डाल में लगा है मानो चलते समय नाइक ने वस्त्र पकड़ा है सो तटरूपी कटि से सरक गया है ऐसी नाइका को छोड़ कर हे मेघ तू क्योंकर आगे जा सकेगा ॥

४४ तेरे बरसने से पृथ्वी की सुगन्ध पवन को सुगन्धित करेगी वही पवन रूखों में मीठी ध्वनि से बहेगी हाथियों को प्यारी लगेगी देवगिरि पर्वत तक मार्ग में तेरी सेवा में रहेगी ॥

४५ कहते हैं कि जब तारकासुर को इन्द्र न जीत सका तो देवताओं ने शिवजी से सहायता मांगी शिवजी ने देवसेना की रक्षा के निमित्त अपना तेज अग्नि को दिया परन्तु अग्नि से सहा न गया उस ने गंगाजी में डाला गंगाजी का वही षणमुख पुत्र हुआ फिर सरकड़े के बन में कृत्तिकाओं ने पाला इस्से नाम उस का शरवनभव और कार्तिकेय हुआ अग्नि से जन्मा इसलिये पावकी

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः ॥ ४५ ॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ॥
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्ज्जितैर्नर्त्तयेथाः ॥ ४६ ॥

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्ज्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः ॥

---

४६ ज्योतिर्लेखावलयि = तारापंक्ति मंडलं यस्मिनस्ति तत् ॥
कुवलयदलं = कमलदलं ।

जन्म उन्हें हर पावक में दियो
देवचमू रच्छा उर लाइके
मन्द करें रवि कौ परताप हू
आपने मात पिता गुन पाइके ॥

४६ स्कन्दजू के जा मयूर की पांख
ज्यों तारेजडी गिर हू परती है
गौरी उठाइके पूत के प्रेम सों
कंजलों कानन पै धरती है
जासु कोएन की उज्जलता
शिव के शशिसों समता करती है
ताहि नचाइयो घोर बडी कर
जादू गुफान में जो भरती है ॥

४७ चलियो करि पूजन वा सुरकौ
शर के बन जाकी सुजन्ममही है
डर बूंदन के मग तेरौ तजें
जिन दम्पति सिद्धन वीन गही है

कहलाया कुमार स्वामी और स्कंद भी उसी बालक के नाम हुए वाहन उस का मोर है जब कुमार बड़ा हुआ तारकासुर को मार उस ने सदां सदां के लिये देवगिरि पर्वत पर वास लिया शिव पार्वती उस के मा बाप कहलाते हैं हे मेघ देवगिरि पर्वत पै पहुंचकर तू कुमार स्वामी को आकाश गंगा के जल में भीगे हुए फूलों की वरषा करके स्नान कराइयो ॥

४६ स्वामि कार्तिक का वाहन होने के कारण मोर पर पार्वती जी बहुत प्यार करती हैं उस की गिरी हुई पंख को जिस में चंद्रोए तारे से जड़े हैं उठाकर अपने कान पर कमल की ठौर रखलेती हैं उसी मोर को तू बड़ी घोर करके देवगिरि पै नचाइयो ॥

४७ स्कन्दजी को जिन की जन्म भूमि सरकड़े का बन है तू पूजकर आगे चलियो उन्हे वीना सुनाने को सिद्ध लोग अपनी स्त्रियों सहित आते होंगे सो वीना भीगने के डर से वे तेरा मार्ग छोड़ देंगे फिर तुझे चर्मनवती अर्थात् चम्बल

व्यालम्बेथास्सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्त्तिम् ॥ ४७ ॥

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्यास्सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात् प्रवाहम् ॥
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ४८ ॥

तामुत्तीर्य्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणाम् ॥
कुन्दक्षेपानुगमधुकर श्रीजुषामात्मविम्बं
पात्रीकुर्व्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ४९ ॥

---

४७ सुरभितनयालम्भजां = गोहननाज्जातां ॥
रन्तिदेवः = नामराजा ॥

४८ शार्ङ्गिणः = विष्णोः ॥
सिन्धुः = नदी ॥

४९ दशपुरं = रन्तिदेवस्य नगरम् ॥

हित आदर हौले उलांघियो वाहि
गऊमख तें सरिता जो बही है
जिमि कीरति रन्ति सुदेवहि की
बनिके जल भूतल ठैर रही है ॥
४८ विसतार बडी है तऊ सरिता
वह दूरतें दीखति है पतरीसी
हरि रूप के चोर पिये जब तू
जल वामें झुकाइ के देह खरीसी
लखिहैं घन खेचर तोहि घने
करके तब दीठ हू चाह भरीसी
मनु भूमि की मोतिन माल में एक
बडी मणि नीलम आनि धरीसी ॥

चौपाई

४९ उतरि ताहि आगे मग लीजो । दशपुर तियन दरश चलि दीजो ॥
भरे कुतूहल उनके नैना । जानत भ्रूविलास अरु सैना ॥
लखन तोहि जब पलक उठैहैं । अद्भुत स्वेत श्याम द्युति पैहैं ॥
जिमि अलिपंक्ति कुन्द संग भाजति । सो छबि उन नैनन बिच राजति ॥

नदी मिलेगी जिस की उत्पत्ति महाराज रन्ति देव के अनेक गोमेधों के रुधिर से कहते हैं तू उस नदी का आदर करता हुआ जाना क्योंकि वह मानो जलरूप में रन्ति देव की कीर्ति है ॥

४८ चम्बल का विस्तार तो बहुत है परन्तु दूर से आकाश वासियों को ऐसी पतली दीखती है मानो पृथ्वी के गले में मोतियों की माला पड़ी है सो जब तू काले वर्ण का (कृष्ण के रंग का चोर) उस में से पानी लेने झुकेगा तो ऐसी शोभा आकाश वासियों को दीखेगी मानो उसी माला में एक बड़ा नीलम रक्खा है ॥

४९ उस नदी को उतर कर तू दशपुर जाना (जो रन्तिदेव की राजधानी है) वहां की स्त्रियां बहुत चतुर हैं उनको तू अपना दरशन दीजो तुझे देखने को जब वे आंख उठावेंगी काली पुतली और स्वेत कोयों की शोभा ऐसी होगी मानो चलते हुए कुन्दपुष्प के पीछे भोरों की पंक्ति जाती है ॥

ब्रह्मावर्त्तं जनपदमधश्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद् भजेथाः ॥
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥ ५० ॥

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली यास्सिषेवे ॥
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना-
मन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥ ५१ ॥

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ॥
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्यैव फेनै-
श्शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५२ ॥

---

५० सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ मनुः २ ॥ १७ ॥

५१ लाङ्गली = हलधरः, बलदेवः ॥

५२ अनुकनखलं = हरिद्वारं ॥
खलः को नात्र मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात् ।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः ॥
शैलराजावतीर्णां = हिमालयादागतां ॥

५० चलियो ब्रह्मावर्तहिं छाई। फिर कुरुखेत पहुंचियो जाई॥
बिकट जुद्ध क्चिन जहां कीन्हे। अजहुं प्रगट तिनके हैं चीन्हे॥
बरसे जहां अरजुन गितवाना। राजन के सिर बेपरमाना॥
जिमि बरसति तेरी जलधारा। कमल मुखन अनगिनत अपारा॥

शिखिरिनी

५१ तजी प्यारी हाला बल-बिमल बाला दृग रची
लगे बन्धू प्यारे समर तजि सेई सरसुती
तुहू कीजो सेवा सुभग चलि ताही सरित की
करेगी तो कारे वह वरन की अन्तरशुधी॥

५२ चल्यो आगे जय्यो कनखल जहां जान्हवलली
हिमाले तें आई सगरकुल श्रेनी सुरग की
करी जाने गौरी भ्रुव कुटिल की फेनन हंसी
जटा शम्भूजी की शशिसहित वीचीकर धरी॥

---

५० ब्रह्मावर्त देश पर छाया डालता हुआ तू कुरुक्षेत्र पहुंचियो जहां महाभारत की लड़ाई के चिन्ह अबतक दीखते हैं उस लड़ाई में अर्जुन ने अपने गांडीव धनुष से राजाओं के सिर पर बेप्रमाण पैने बाण ऐसे बरसाए थे जैसे तू कमलों पर मेह की धारा बरसाता है॥

५१ बलदेव जी कौरव पांडवों को अपने समान बन्धु जान उनके संग्राम में न गए प्यारी मदिरा को जिसे सौत भाव से रेवती जी निरखा करती थीं अर्थात् जो उन के नेत्र समान निर्मल थी त्याग कर सरस्वती नदी का सेवन करते रहे उसी नदी का सेवन हे मेघ तू भी करना तू कृष्ण के रंग का चोर है उस जल के सेवन से तेरी अन्तरशुद्धी हो जाइगी॥

५२ आगे तू कनखल को जाना जहां जन्हुसुता (श्रीगंगाजी) सगर सन्तान को स्वर्ग की नसेनी हिमालय से उतरी हैं जब सौत भाव करके पार्वतीजी ने भोंह टेढ़ी की थी तो उसी गंगाजी ने अपने स्वेत फेनों से मानो उनकी हंसी करके अपने तरंगरूपी हाथों से शिवजी की जटा चन्द्रमा सहित पकड़ ली थी॥

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पूर्व्वार्द्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्क्कयेस्तिर्य्यगम्भः ॥
संसर्पन्त्यास्सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेनाभिरामा ॥ ५३ ॥

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ॥
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्ण-
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खात पङ्कोपमेयाम् ॥ ५४ ॥

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षयितचमरीबालभारो दवाग्निः ॥
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्त्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५५ ॥

---

५३ तर्क्कयेः=विचारयेः ॥
तिर्य्यक्=तिरश्चीनं यथा स्यात्तथा ॥
अस्थानोपगतः= प्रयागादन्यत्र प्राप्तः ॥

५४ प्रभवं = कारणं अथवा पितरम् ॥

५५ सरलः = देवदारुः ॥

५३ जु तू इच्छा वाके करि बिमल पानी पियन की
झुके आधो लम्बेतन गगन में ज्यों सुरकरी
बने तो छाया तें तुरत वह धारा ललित सी
मनो है कालिन्दी अनतहिं बिनासंगम मिली ॥

५४ बसें ते कस्तूरी मृग नित हिमाद्री शिलन पै
वुहै सोंधो गंगागुरु धवल पालो परि लसै
मिटैवे तू बैठे मग श्रम जु ताकी शिखर पै
दिपै मानो गोरे हर वृषभ खोदी कलिल है ॥

छप्पै

५५ चलत पवन बन प्रबल घिसत तरु सरल परस्पर
प्रगटत अनल प्रचंड चरत चमरीमृग कचभर
सो दवागि यदि दहकि देह तिहिं अचल सतावे
उचित होइ तब तोहि तुरतही जल बरसावे
करि करि सहस्रधारा जलद दूर तासु बाधा करे
फल मुख्य सुजन सम्पति यही पीर पराई नित हरे ॥

---

५३ जो तू गंगाजी का जल पीने को दिग्गज की भांति आकाश में लम्बा होकर झुकेगा तो तेरे काले रंग की छाया श्वेतजल में पड़कर ऐसी शोभा होगी मानो प्रयाग के विनाही गंगा जमुना का संगम हुआ है ॥

५४ गंगाजी का पिता हिमालय पर्वत है क्योंकि उसी से गंगाजी की उत्पत्ति है उस पर्वत पर कस्तूरी मृग बैठते हैं इससे वह सुगन्धित है और पाला पड़ने से सुपेद है उसकी शिखर पर जब तू मार्ग की थकावट मिटाने बैठेगा तो ऐसी शोभा होगी मानो शिवजी के धौले नांदिये ने अपने सींगों से पृथ्वी खोदी है सो कुछ कीचड़ सींग पर लगरही है ॥

५५ पवन चलने से सरल (देवदारु) के वृक्ष आपस में रगड़ते हैं उन से आग निकल कर वन में लगती है चिनगारियों से चमरी मृगों की पूंछ के बाल जलते हैं कदाचित तेरे सामने वही दावानल पहाड़ में लगे तो तू तुरन्त जल बरसा कर पहाड़ की बाधा मिटा दीजो क्योंकि सत्पुरुषों की सम्पत्ति का मुख्य फल यही है कि पराई पीर हरे ॥

ये त्वां मुक्तध्वनिमसहना: स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
दर्पात्सेकादुपरि शरभा लङ्घयिष्यन्त्यलङ्घ्यम् ॥
तान् कुर्व्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्यु: परिभवपदं निष्फलारम्भयत्ना: ॥ ५६ ॥

तच्च व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्द्धेन्दुमौले-
श्शश्वत् सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्र: परीया: ॥
यस्मिन् दृष्टे करणविगमाद्दूरमुद्भूतपापा:
कल्पन्तेऽस्य स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधाना: ॥ ५७ ॥

शब्दायन्ते मधुरमनिलै: कीचका: पूर्य्यमाणा:
संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभि: ॥

---

५६ शरभा: = अष्टापद मृगविशेषा: ॥

५७ उपचितबलिम् = रचित पूजाविधिम् ॥
परीया: = प्रदक्षिणं कुरु ॥
करणविगमाद्दूरम् = देहत्यागानन्तरम् ॥

५८ कीचका: = वेणव: कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धता: ॥

५६ सुनत शब्द घनघोर शरभ तिहिं परवत माहीं
कुपित होइगे अधिक तोहि सहि सकिहैं नाहीं
कूदैं करि करि दर्प वृथा अपनो तन तोरन
तो अलंघ्य कों चहैं लांघि ऊपर की ओरन
बरसाइ घने करका तिन्हे दीजो बिहसि भजाइ घन
को न जगत लज्जित भयो जिन कीनो निष्फल यतन ॥

५७ शिला एक विच लसत चिन्ह तहं पद शशिशेखर
नितप्रति पूजत रहत जाहि जोगी सिद्धेश्वर
परिक्रमा घन ताहि यथाविधि तू चलि दीजो
भक्तिभाव उर लाय नम्र आगे बनिलीजो
धरि अचल दीठि तिहिं चरन में श्रद्धमान निष्पापनर
तन तजत मिलत शिवगणन में सदां सदां कों पाइ वर ॥

५८ बांसरन्ध्र भरि पवन करत धुनि अधिक सुहावन
मानहु मुरली बजति मधुर सुर सों मनभावन

---

५६ तेरा गरजना सुनकर शरभों को बड़ा कोप होगा (ये आठ पांव के पशू बड़े बलवान होते हैं) अपने बल का इन्हे बड़ा घमंड है तुझे उलांघने के लिये ऊपर को कूद कूद कर अपने हाथ पांव तोड़ेंगे तू ओलों की वरषा से उनकी हंसी सी करके उन्हे भगा दीजो निष्फल यतन करने से किस की हंसी नहीं हुई है ॥

५७ उसी पहाड़ में महादेव जी की चरनशिला है जिसे योगी नित्य पूजते हैं तू भक्तिपूर्वक नम्र होकर उस की प्रदक्षिना कीजो उस में श्रद्धामान शुद्ध पुरुष ध्यान देकर मरने से पीछे शिवजी के गणों में सदां सदां को गिनती पाते हैं ॥

५८ बन के पुराने बांसों में जो छेद हैं उन में पवन भर के मधुर मुरली की सी धुनि होगी किन्नरी अच्छे सुर से शिवजी के गीत गावेंगी ऐसे में जो तू भी

निह्रादी ते मुरज इव चेत् कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तच्च भावी समग्रः ॥ ५८ ॥

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान् विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ॥
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्य्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥ ५९ ॥

गत्वा चोर्द्धं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ॥
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिशमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥ ६० ॥

---

५९ भृगुपतियशो वर्त्म = परशुरामस्य यशः प्रवृत्तिकारणम् ॥

६० अट्टहासः = हासादीनां धावल्यं कविसमय सिद्धम् ॥

बिह्वल किन्नरनारि आपनी तान सुनावति
हरषि हरषि जिय माहिं चपुर बिजई गुन गावति
घनघोर जाइ यदि तू करे ज्यों मृदंग गुमकत गुफन
पूरन समाज संगीत तहं शिवजू को बनिजाइ घन ॥

चौपाई

५९ आगे हिम परवत तट पाटी। क्रौञ्चरन्ध्र नामक इक घाटी ॥
है सोई हंसन को द्वारा। भृगुपति यश प्रगटावनहारा ॥
ता बिच कढि उत्तर चलि दीजो। तिरछी गति लम्बो तन कीजो ॥
जिमि हरि श्याम पांव बिस्तार्‍यो। बलि छलिबे को हत जब धार्‍यो ॥
६० उठि ऊंचो कैलासहिं जइयो। अतिथी वा गिरि को बनि रहियो ॥
दर्पण है वह सुर बनितन को। उकसायो लंकेश भुजन को ॥
तुंग शिखर लै नभ में राजे। सितता तासु कुमुद लखि लाजे ॥
मनु शिव अट्टहास इकठौरो। करत प्रकाश दिशन बिच धौरो ॥

गरज कर गुफाओं में मृदंग सा बजादेगा तो महादेव जी के संगीत का पूरा समाज़ वहां बन जायगा ॥

५९ आगे हिमालय के तट में क्रौञ्चरन्ध्र नाम घाटी है उसी में होकर हंस आते जाते हैं और वही परशुराम के यश का मार्ग है अर्थात् परशुराम का यश उसी से प्रगट हुआ था (क्योंकि महादेव से बानविद्या सीखकर जब परशुराम क्षत्रियों को जीतने कैलास से उतरे तो अपने बानों से पहाड़ काटकर यह नया मार्ग उन्हों ने बनाया था) तू लम्बा और तिरछा होकर उस से निकल जाना तेरा लम्बा शरीर ऐसा शोभायमान होगा जैसा बलि छलने के समय वामन जी का बढ़ाया हुआ पांव था ॥

६० क्रौञ्चरन्ध्र से निकलकर तू ऊपर को चलियो आगे कैलास मिलेगा उस का पाहुना बनियो वह पर्वत स्फटिक मणि का है इसलिये देवताओं की स्त्रियों का दर्पण है उसी को रावन ने जड़ से हिला दिया था उस की स्वेत शिखर आकाश से लगरही है सुपेदी में कमल को भी लजाता है मानो शिवजी का अट्टहास इकट्ठा होकर दिशाओं में चमकता है ॥

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ॥
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-
मंशन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥ ६१ ॥

क्षित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विहरेत् पादचारेण गौरी ॥
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु ॥ ६२ ॥

तचावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ॥
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे धर्म्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवण परुषैर्गर्जितैर्भीषयेस्ताः ॥ ६३ ॥

क्षेमाम्भोज प्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्व्वन् कामात् क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ॥

---

६१ स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे = सचिक्कण मर्दितं यदञ्जनं तस्यामेवाभा यस्मिन् ॥
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदः = तत्काल छिन्नस्य गजदन्तस्य खण्डः ॥

६२ भङ्गीभक्त्या = पर्व्वणां रचनया ॥
स्तम्भितान्तरजलौघः = घनीभावं प्रापितोऽन्तरजलस्य प्रवाहो येन सः ॥

६३ यन्त्रधारागृहत्वम् = जलसेचनयन्त्रम् ॥

६१ वाके निकट जबहिं तू जाई। रहे रुचिर अंजन रंग छाई ॥
धवल वरण वह शैल निदाना। द्विरददन्त सदखंड समाना ॥
शोभा तुरत मनोहर पावे। निरखत टूकटक नैनन भावे ॥
जिम हलधरतन लसत सुहायो। नील बसन कांधे लटकायो ॥

६२ लिए शम्भु कर निज कर माहीं। भुजगवलय जाकर बिच नाहीं ॥
गवरि होइ पायन यदि फिरती। वा क्रीडागिरि मांहि विचरती ॥
पैरीरूप सुभग बनि लीजो। पुष्ट नीर अन्तर कौ कीजो ॥
धरि पग जब तो तन वे धावें। चढत चरन बिच खेद न पावें ॥

६३ सुर युवती जुरि मिलि तहा आवें। पकरि तोहि जलजन्त्र बनावें ॥
रघसि रघसि हीराकंगन सों। नीर झरावें तो अंगन सों ॥
इन खिलकौरिन तें यदि तेरो। कुटकारो नहिं होइ सवेरो ॥
श्रवन कठोर घोर तब कीजो। यों डरपाय उन्हे मग लीजो ॥

घनाक्षरी

६४ उपजत वृन्द वृन्द वारिज सुन्हेरी जामें
ऐसो मानसर हू कौ नीर मेघ पीजो तू

---

६१ उस के कंधे पर जब तू कज्जल समान काला बैठेगा तौ वह तुरंत के कटे हाथी दांत के समान उज्जल ऐसी शोभा पावेगा मानो गोरे बलदेव जी के कन्धे पर नीलाम्बर रक्खा है ॥

६२ शिवजी के जिस हाथ में सर्प का कंगन नहीं है उसे अपने हाथ में लिये हुऐ कदाचित पार्वती उस पहाड़ में पैरों फिरती हुई तुझे मिल जायं तौ तू अपने भीतर का जल कड़ा करके सीढ़ी का रूप धर लीजो इसलिये कि तेरे शरीर पै पांव रखकर चढ़ने में उन्हें खेद न हो ॥

६३ वहां देवताओं की स्त्रियां तुझे पकड़कर जल छिड़कने की कल अर्थात पिचकारी बनावेंगी और अपने हीरा जड़े कंगनों से तेरे शरीर को रगड़ कर जल बरसावेंगी उन के इस खेल से जो तेरा छुटकारा शीघ्र न हो सके तौ तू कठोर घोर करके उन्हें डरा दीजो ॥

६४ मानसरोवर के जिस जल में सुनहरी कमल उपजते हैं उस को तू पीजो

धुन्वन् वातैस्सजलपृषतैः कल्पवृक्षांशुकानि
च्छायाभिन्नस्फटिकविशदं निर्व्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६४ ॥

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ॥
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमानै-
र्मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥ ६५ ॥

इति पूर्व्वमेघः

---

६४ कल्पवृक्षः=पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः ।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥
निर्विशेः=समुपभुङ्क्ष्व ॥
नगेन्द्रम्= कैलासम् ॥

६५ दुकूलं= सूक्ष्मं वस्त्रं ॥
न त्वं दृष्टा न पुनरलकां ज्ञास्यसे=पुनस्त्वन्तु न ज्ञास्यसे इति न किन्तु ज्ञास्यस एव ॥

प्रीति रीति राखें काज दिग्गज ऐरावत सों
बूंदन बुन्यो सौ मुख वस्त्र वाहि दीजो तू
वारि भरी बातनतें कल्पवृक्ष पातन में
कान कौं सुहाती सी धुनि कराइ लीजो तू
फटिक समान गोरे बिम्बित पहार माहिं
जोई तोहि भावें सेा बिहार जाइ कीजो तू ॥

६५ देखि जानि लीजो वा नगेन्द्र के बसी है लंक
अलका हमारी तीर जन्हु की दुलारी के
पीतम के अंक मांहि एहो कामचारी मेघ
बैठी जिमि नारी छोरें छोर स्वेत सारी के
पावस में सोई नीर चूवत धरेगी तोहि
ऊंचे से निकेत सातखन की अटारी के
अबला संवारे मानो मोतिन सों गूंथे जाल
सीस पै सलोने चारु बेनी बार कारी के ॥

इति पूर्व्वमेघः

ऐरावत हाथी को अपनी बूंदों का सिरोपाव देकर उससे प्रीति कीजो अपने जल से भीगी हुई पवन चलाकर कल्पवृक्ष के पत्तों में मीठी धुनि कराइयो इस भांति उस चित्र विचित्र स्फटिक समान निर्मल पहाड़ में जहां चाहे तहां फिरियो (क्योंकि वह तेरा मित्र है)

६५ कैलास के कटक में गंगा तट पै अलकापुरी वसती है उसे देखकर जान लीजो मानो सुपेद साड़ी के छोर खोले हुए कोई नायका अपने प्यारे की गोद में बैठी है वही अलका वरसात में तुझ जल टपकते हुए को अपने ऊंचे महलों पर ऐसे रखलेगी जैसे मोतियों से गूंथे हुए काले अलकजाल को कामिनी अपने मस्तक पर रखती है ॥

INDIAN INSTITUTE
OXFORD